अध्याय-4

प्राकृतिक संसाधन का अर्थ एवं वर्गीकरण

(Meaning and Classification of Natural Resources)

संसाधन का अर्थ (Meaning of Resource)

संसाधन एक ऐसी प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा है, जिसका उपयोग हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में करते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय जीवन की प्रगति, विकास तथा अस्तित्व संसाधनों पर निर्भर करता है। प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन मानव-जीवन के लिए उपयोगी है, किन्तु उसका उपयोग उपयुक्त तकनीकी विकास द्वारा ही सम्भव है। भूमि, सूर्यातप, पवन, जल, वन एवं वन्य प्रणाली मानव-जीवन की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान थे। इनका क्रमिक विकास तकनीकी के विकास के साथ ही हुआ। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार संसाधनों का विकास कर लिया है। स्पष्ट है पृथ्वी पर विद्यमान तत्त्वों को जो मानव द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य हों, संसाधन कहते हैं। **जिम्मरमेन** ने लिखा है कि, ''संसाधन का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना है, यह उद्देश्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति करना है।''[1]

इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु संसाधन की श्रेणी में तभी आती है जब वह निम्नलिखित दशाओं में खरी उतरती है:-

(i) वस्तु का उपयोग सम्भव हो।

(ii) इसका रूपान्तरण अधिक मूल्यवान तथा उपयोगी वस्तु के रूप में किया जा सके।

(iii) जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की क्षमता हो।

(iv) इन वस्तुओं के दोहन की योग्यता रखने वाला मानव संसाधन उपलब्ध हो।

(v) संसाधनों के रूप में पोषणीय विकास करने के लिए आवश्यक पूँजी हो।

संसाधन शब्द अंग्रेजी भाषा के *'Resource'* शब्द का पर्याय है जो दो शब्दों *Re* तथा *Source* से मिलकर बना है जिसका आशय क्रमश: *Re= दीर्घ अवधि या पुन: (Again) तथा Source = साधन या उपाय (Device)* है। अर्थात् प्रकृति में उपलब्ध वे साधन जिन पर कोई जैविक समुदाय दीर्घ अवधि तक निर्भर रह सके तथा पुन: पूर्ति या पुनर्निर्माण की क्षमता हो। उदाहरण के लिए प्रकृति में वायु तथा सूर्य का प्रकाश दीर्घ अवधि तक मिलते रहेंगे जबकि वनस्पति को पुन: उत्पादित किया जा सकता है। स्पष्ट है संसाधन प्रकृति में पाया जाने वाला ऐसा पदार्थ, गुण या तत्त्व होता है जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता रखता हो। संसाधन दृष्टिगत (Visible) व अदृश्य (Invisible) दोनों रूपों में पाये जाते हैं। दृश्यमान संसाधनों में जल, भूमि, खनिज, वनस्पति आदि प्रमुख हैं। मानव जीवन, उसका स्वास्थ्य, इच्छा, ज्ञान, सामाजिक सामंजस्य, आर्थिक उन्नति आदि महत्त्वपूर्ण अदृश्य संसाधन हैं।

संसाधन को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है, इनमें जिम्मरमेन, स्मिथ एवं फिलिप्स (Smith & Philis), मैकनाल (Macnall), हैमिल्टन (Hamilton), जे.फिशर (J.S.Fisher) तथा डडले स्टेम्प (Stamp D.) प्रमुख हैं।

समाज विज्ञान कोष (Encyclopedia of the Social Science) के अनुसार, ''संसाधन मानवीय पर्यावरण के वे पक्ष हैं, जिनके द्वारा मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति में सुविधा होती है तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है।'' (Resources are those

---

1. Resources is a means of attaining given ends, the ends being satisfaction of individual wants and attainment of all social objectives–Zimmerman, E.W., *An Introduction to World Resources, 1951.*

aspects of man's environment which render possible or facilitate the satisfaction of human wants and the attainment of social objectives)[1]

जिम्मरमेन के अनुसार, "संसाधन पर्यावरण की वे विशेषताएँ हैं जो मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम मानी जाती हैं। उन्हें मनुष्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं द्वारा उपयोगिता प्रदान की जाती है।" (Features of the environment which are, or are considered to be capable of serving man's needs; they are given utility by the capabilities and wants of men.)[2]

जोहन्स्टन के अनुसार, "एक संकल्पना जो मानवीय सन्तुष्टि, सम्पन्नता तथा शक्ति प्रदान करने वाले स्रोतों को निर्दिष्ट करती है। श्रम, उद्यमी कौशल, विनिवेश, स्थिर पूँजीगत ढाँचा, तकनीकी, ज्ञान, सामाजिक स्थिरता तथा सांस्कृतिक एवं भौतिक विशेषताएँ किसी देश के संसाधन माने जा सकते हैं।" (A concept used to denote sources of human satisfaction, wealth or strength, Labour, entrepreneurial skills, investment funds, fixed capital assets, technology, knowledge, social stability and cultural and physical attributes may be referred to as the resources of a country.)[3]

जेम्स फिशर (Fisher J.S.) के अनुसार, "संसाधन ऐसी कोई वस्तु है जो मानवीय आवश्यकताओं तथा इच्छाओं की पूर्ति करता है।" (Resources are anything that can be used to satisfy a need or desire.)

स्मिथ एवं **फिलिप्स** के मतानुसार, "मूलत: संसाधन केवल पर्यावरणीय कार्यशीलता है, जो मानवीय उपयोग में आती है।" (Fundamentally, resources are merely environment functioning in the service of man.)

संसाधन किसी आवश्यकता या कमी की पूर्ति करने वाला साधन होता है। यह एक संग्रह या आरक्षित राशि होती है, जिसकी कोई भी आवश्यकता होने पर दोहन किया जा सकता है। (A means of some want of deficiency; stock or reserve upon which one can draw when necessary.)[4]

संसाधनों को कुछ विद्वानों ने एक पक्षीय रूप में परिभाषित करते हुए केवल संसाधन को प्राकृतिक संसाधन के रूप में माना है। **फेलमेन** (Fellmann.J.) ने बताया कि,"संसाधन या प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक रूप में पाये जाने वाले पदार्थ हैं, जो किसी भी दशा में मानव के आर्थिक विकास या कल्याण (Well being) में प्रयुक्त रहता है। पर्यावरण में संसाधनों की उपलब्धता तथा वितरण भौतिक प्रक्रिया का परिणाम है जिन पर मानव का कमोबेश नियन्त्रण पाया जाता है।[5] इसी प्रकार **मैकनाल** (Macnall.P.E.) ने भी संसाधन को प्राकृतिक संसाधन बताया है जो प्रकृति द्वारा प्रदान किया जाता है तथा मानवीय उपयोग के योग्य होता है। स्पष्ट है कि संसाधनों की प्रकृति प्राकृतिक न होकर मानवीय भी होती है। बिना मानवीय प्रयास के प्रकृति में उपलब्ध कोई तत्त्व, पदार्थ या दशा संसाधन का रूप नहीं ले सकती है। उदाहरणार्थ भूगर्भ में स्थित खनिज उस समय तक संसाधन नहीं कहलाते हैं जब तक कि उनकी स्थिति दोहन के उपरान्त मानवीय उपयोग के योग्य न हो जाये तथा यह मानवीय प्रयासों से ही सम्भव है। प्रकृति में कुछ संसाधन ही ऐसे हैं जो बिना मानवीय प्रयास के स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। शेष को मानवीय प्रयासों से ही उपयोगी बनाया जाता है। इसी आधार पर जिम्मरमेन ने कहा है कि,"संसाधन होते नहीं वे बनते हैं।" इसे यीट्स ने स्पष्ट किया है कि संसाधनों को आप किस रूप में बनाना चाहते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। इस दृष्टि से मनुष्य का ज्ञान सबसे बड़ा संसाधन है, क्योंकि यही संसाधनों के स्वरूप को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। मिचेल के अनुसार, "मनुष्य का ज्ञान सभी संसाधनों की जननी है।"

मानवीय आवश्यकताओं के स्वरूप में परिवर्तन के अनुसार ही संसाधन की महत्ता बढ़ जाती है। 19वीं शताब्दी में यूरेनियम का उपयोग केवल रंगीन काँच में किया जाता था लेकिन आणविक तकनीकी का आविष्कार होते ही इसका सामरिक एवं ऊर्जा संसाधन के रूप में महत्त्व बढ़ गया।

---

1. *Encyclopaedia of the Social Science*, New York : Macmillan, 1933, Vol. XI, p. 290-91.
2. Zimmerman, W. W., 1933, *World Resources and Industries*, New York : Harper, p. 1.
3. Johnston, R.J., Gregory, D., Pratt, G. and M., *The Dictionary of Human Geography*, 2001, p. 706.
4. Dudly Stamp, p. 417.
5. Fellmann, J., Getis, A. and Getis, J., *Humman Geography, Landscapes of Human activities*, 1977, p. 278.

संसाधनों का निर्माण (Creation of Resources)

संसाधनों के निर्माण की जन्मदायिनी प्रकृति को माना जाता है। प्रकृति के अनेक तत्त्व स्वयं संसाधन तथा संसाधन निर्माणकारी कारक दोनों रूपों में पाये जाते हैं। लेकिन मानवीय प्रभाव से इनकी प्रकृति बदल जाती है। इनमें वायु, जल, वनस्पति, मृदा आदि प्रमुख हैं। ये सभी तत्त्व जब तक मानव प्रभाव से अप्रभावित रहते हैं, संसाधन के रूप में उपलब्ध रहते हैं। जल एक प्राकृतिक संसाधन है तथा संसाधन निर्माणकारी कारक के रूप में इससे जल-विद्युत अर्थात् ऊर्जा संसाधन का निर्माण किया जाता है। इन तत्त्वों द्वारा संसाधन निर्माण में समय की प्रमुख भूमिका होती है। उदाहरण के लिए जल तथा पवन से ऊर्जा निर्माण अल्प समय में किया जा सकता है, लेकिन प्राकृतिक वनस्पति तथा जीवाश्मों के कायान्तरण से कोयला एवं पेट्रोलियम के निर्माण काफी लम्बा समय (करोड़ों वर्ष) लगता है।

प्रकृति एक ऐसा भौतिक आधार है जिस पर मानव अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं तकनीकी दक्षता से प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग करके संसाधन निर्माण में अपनी भूमिका निभाता है। मानवीय ज्ञान में वृद्धि से प्राकृतिक तत्त्वों की कार्यदक्षता में वृद्धि होती है। सन् 1750 से पूर्व मानव जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का सही ढंग से उपयोग करना नहीं जानता था, लेकिन धीरे-धीरे मानवीय ज्ञान में वृद्धि होती गई तथा सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ मानव विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों से अवगत हुआ तथा उनके उपयोग के उन्नत तरीके तलाशने लगा फलस्वरूप संसाधनों में वृद्धि हुई।

बॉक्स-4.1 मानव, प्राविधिकी तथा संसाधन (Man, Technology and Resources)

प्रकृति मानव को उत्तरोत्तर विकास के अवसर प्रदान करती है जिनके अन्तर्गत वह अपनी क्षमताओं और ज्ञान के आधार पर विकासरत रहता है। प्रकृति में विभिन्न प्रकार के संसाधन उपलब्ध रहते हैं जिनका दोहन मनुष्य अपने ज्ञान के स्तर के अनुसार करता है तथा आवश्यकताओं में परिवर्तन होने के साथ ही अपने ज्ञान को उन्नत (Improve) करता है। प्रकृति में पेट्रोलियम उपलब्ध है लेकिन यह मानव को तुरन्त नहीं मिलता है। इसके दोहन हेतु मानव तकनीकी विकास करता है। संसाधन लगातार परिवर्तित होते रहते हैं। यद्यपि मानव भी अपनी क्षमताओं के अनुसार परिवर्तन करता रहता है। सन् 1850 में पृथ्वी का जो स्वरूप था आज परिवर्तित हो गया है। हैमिल्टन के अनुसार मानव प्रौद्योगिकी पदार्थों को मूल्यवान बनाती है। प्राविधिकी के बल पर भी मानवीय सभ्यता में प्रगति हुई जिससे संसाधनों का तीव्रता से उपयोग हुआ है। प्राविधिक ज्ञान के आधार पर मानव ने अवरोधों व तटस्थ कारकों से समायोजन करके उन्हें उपयोग के अधिकार क्षेत्र में लाने का प्रयास किया है। इस प्रकार सामान्य मानव जो प्रकृति का एक विभिन्न घटक है, निरन्तर प्राविधिक ज्ञान अर्जित करते हुए प्रकृति का प्रतिरोधी भी बन जाता है। अत: मानवीय ज्ञान संसाधनों का सृजनकर्ता तथा विनाशक दोनों है।

संसाधनों की संकल्पनाएँ (Concepts of Resources)

प्रकृति में विद्यमान संसाधनों के विभिन्न पक्षों को मद्देनजर रखते हुए विद्वानों ने संसाधनों की कुछ संकल्पनाएँ स्पष्ट की हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

(1) **संसाधन होते नहीं, बनाये जाते हैं** (Resources are not present, They have to be made)-इस संकल्पना के अनुसार संसाधन मूलत: होते नहीं, उन्हें मानव अपनी आवश्यकतानुसार निर्मित करता है। प्रकृति में विद्यमान कोई तत्त्व वर्तमान में संसाधन नहीं है, लेकिन भविष्य में मानवीय कौशल एवं कार्यकुशलता से संसाधन बन सकता है। नदियों में प्रवाहित जल से विद्युत का उत्पादन कर उसे विभिन्न कार्यों के उपयोग में लिया जाता है। इस सन्दर्भ में ईसा बोमेन ने लिखा है कि, ''पर्यावरण के भौतिक तत्त्व सीमित मात्रा में स्थैतिक हैं। ज्यों ही मानवीय तत्त्वों से सम्पर्क होता है ये तत्त्व मानवीय विशेषताओं की तरह ही गतिशील हो जाते हैं।'' स्पष्ट है संसाधन होते नहीं बनते हैं। प्रकृति में विविध रूपों में वितरित पदार्थों को मनुष्य ने अपने कौशल एवं दक्षता से उपयोग के योग्य बना लिया है।

(2) **संसाधन एक गतिशील संकल्पना है, स्थिर नहीं** (Resources is a dynamic concept and not static)-इस अवधारणा के अनुसार कुछ संसाधन वर्तमान में अनेक प्रतिरोधों (Resistances) के कारण मानवीय उपयोग के योग्य नहीं हैं, वे ही कालान्तर में संसाधन का रूप लेकर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। इस प्रक्रिया में मानवीय ज्ञान की प्रमुख भूमिका

होती है। जिम्मरमैन ने बताया कि "संसाधन मानवीय ज्ञान व कुशलता में वृद्धि के साथ बढ़ते हैं तथा दोष एवं गलतियों से कम होते हैं।" एक शताब्दी पूर्व मानव अनेक खनिजों से अनभिज्ञ था एवं मानवीय कौशल एवं वृद्धि के साथ इनकी उपलब्धता बढ़ी है।

(3) **संसाधन एक कार्यात्मक संकल्पना है** (Resource is functional concept)-संसाधन का प्रमुख लक्षण उसकी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता है। अत: कोई भी प्राकृतिक तत्त्व मानवीय उपयोग के योग्य सक्रियात्मक (Functional) रूप में बनता है। भूगर्भ में स्थित कोयला एवं पेट्रोलियम खनन करके ही दोहन योग्य बनता है तथा संसाधन कहलाता है, भूगर्भ में नहीं। इसी प्रकार पृथ्वी तल पर विभिन्न नदियों से प्रवाहित जल भी कार्यात्मक रूप में ही उपयोगी बन पाता है। मनुष्य संसाधनों में कार्यात्मकता उत्पन्न करता है। प्राकृतिक वस्तुओं के उपलब्ध होने से मानव की कार्यात्मक क्षमता में वृद्धि हुई है जिससे नदियों, खनिजों, जंगल तथा मृदा जीवीय संसाधनों में परिवर्तन किये हैं।

(4) संसाधन प्रतिरोधों तथा तटस्थ तत्त्वों के साथ मिलते हैं (Resources exist side by with Resistance and Neutral stuff)-प्रकृति में संसाधनों की उपलब्धता के साथ ही प्रतिरोध एवं तटस्थ तत्त्व भी रहते हैं। इन्हें पृथक् कर पाना कठिन है। प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये प्रतिरोधक तत्त्वों को हानिकारक तत्त्व कहते हैं। इनमें बंजर भूमि, बाढ़, बीमारियाँ तथा भूकम्प एवं तूफान जैसी प्राकृतिक आपदायें प्रमुख हैं। इसी प्रकार शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक भावनायें आदि मानवीय क्षेत्र के संसाधन एवं प्रतिरोधक हैं। इनकी अनुकूलता संसाधन है तथा प्रतिकूलता प्रतिरोध है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति महत्त्वपूर्ण संसाधन है जबकि अज्ञानता एक प्रतिरोधक तत्त्व है। कुछ तत्त्व दोनों ही स्थितियों में स्वतन्त्र रहते हैं, जिन्हें मूक तत्त्व या तटस्थ कहते हैं। प्राविधिक ज्ञान में वृद्धि करके तटस्थ एवं प्रतिरोध तत्त्वों को संसाधन बनाया जा सकता है।

(5) मनुष्य के रहन-सहन का स्तर संसाधनों के उपयोग का परिणाम है (The standard of man's living is the result of the utilization of resources)-मानव ने विभिन्न संसाधनों का उपयोग करके अपने जीवनस्तर में सुधार किया है। प्राचीन मानव जब प्रकृति में विद्यमान संसाधनों के दोहन से अनभिज्ञ था तो जंगली अवस्था में जीवन व्यतीत करता था। लेकिन जैसे-जैसे संसाधनों का उपयोग प्रारम्भ हुआ मानवीय जीवन का स्वरूप बदल गया। इस दृष्टिकोण से यदि मानव सन्तुलित रूप में संसाधनों का उपयोग करके जीवन स्तर में सुधार लाता है तो प्रकृति में सन्तुलन बना रहता है अन्यथा अविवेकपूर्ण एवं अतिदोहन से प्रकृति में अनेक संकट उत्पन्न हो जाते हैं। वर्तमान में ओजोन परत में अल्पता संसाधनों का दोहन कर जीवन स्तर में सुधार का ही परिणाम है।

(6) संसाधनों के संरक्षण की संकल्पना (Concept of resources conservation)-जिस प्रकार संसाधन होते नहीं बनते हैं उसी प्रकार संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन इनके ह्रास का कारण बनता है। संसाधनों के संरक्षण से अभिप्राय है उनका इस सीमा तक उपयोग किया जाये कि उनकी प्रकृति में दीर्घकाल तक उपलब्धता बनी रहे। इस प्रकार संसाधनों का विवेकपूर्ण दोहन ही उनका संरक्षण है। अत: मानव जिसे संसाधनों का निर्माणकर्ता बताया गया है उसे प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों के लिए भी कठोर कदम उठाने चाहिए।

प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वों को मानव संसाधन का रूप देता है जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवन यापन करते हुए सांस्कृतिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के साथ ज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है। स्पष्ट है कि संसाधनों की प्रकृति भी परिवर्तनशील है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति, भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्त्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है।

संसाधनों की प्रकृति (Nature of Resources)

संसाधनों की प्रकृति गतिशील है, जो निरन्तर परिवर्तनशील रहते हुए नवीन स्वरूप प्राप्त करती रहती है तथा इसमें समय महत्त्वपूर्ण घटक है। पृथ्वी पर प्रारम्भिक रूप में जलवायु परिवर्तन से सघन वनस्पति आवरण विकसित हुआ, जिसका कालान्तर में भूगर्भिक उलट-फेर के उपरान्त कायान्तरण हुआ तथा कोयला एवं पेट्रोलियम बना। स्पष्ट है पूर्व में विकसित प्राकृतिक वनस्पति जीवाश्मीय ईंधन बन गई। इसके अतिरिक्त पर्यावरण के उपयोग द्वारा मानव ने संसाधनों की प्रकृति को बदला है। संसाधनों की बदलती हुई प्रकृति अग्रलिखित है-

प्राकृतिक वातावरण
↓
मानव द्वारा उपयोग
↓
तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता का विकास
↓
संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि
↓
संसाधनों की प्रकृति में परिवर्तन

प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान तत्त्वों को मानव संसाधन का रूप देता है जिसमें उसके कौशल व दक्षता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य ने आदिकाल से ही प्राकृतिक वातावरण के साथ जीवनयापन करते हुए सांस्कृतिक विकास किया है जिसका आधार संसाधन ही रहा है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संगठन के समय ज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव द्वारा प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करके तकनीकी ज्ञान एवं सभ्यता विकास किया है, जिसके फलस्वरूप संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि हुई है। प्रकृति में जैसे ही संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, संसाधनों की प्रकृति में भी परिवर्तन होता है। साथ ही संसाधनों की प्रकृति भौगोलिक स्थिति, उपलब्धता, आर्थिक महत्त्व, उपयोग के समय स्वरूप आदि के अनुसार बदलती रहती है।

समय के साथ संसाधनों की कमी से प्रकृति भी परिवर्तनशील रहती है। कोयला समय के साथ विभिन्न स्वरूपों, पीट, लिग्नाईट, बिटुमिन्स-एन्थ्रेसाइट में बदलता है। इसी प्रकार लौह अयस्क, ताँबा, बॉक्साइट आदि खनिज संसाधन धात्विक सम्पन्नता के आधार पर भिन्न प्रकृति रखते हैं। स्थिति का भी संसाधनों की प्रवृत्ति पर प्रभाव पड़ता है। भूमध्यरेखीय प्रदेश की जैविक सम्पदा शीतोष्ण कटिबन्धीय या ध्रुवीय प्रदेशों से भिन्न प्रकृति की होती है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य जो विभिन्न वर्गों के संसाधन हैं, परिवर्तनशील रहते हुए अपनी प्रकृति भी बदलते हैं जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ ही मानवीय क्रियाकलाप भी उत्तरदायी हैं।

संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources)

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के संसाधन पाये जाते हैं, जिनके निर्माण का मूल स्रोत प्रकृति है तथा ये सभी मानवीय प्रभाव से नवीन स्वरूप में स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति मानव के लिए संसाधनों का निर्माण करती है जिनको मानव अपने प्रयासों, इच्छाओं और तकनीकी दक्षता से अपने उपयोग योग्य बनाता है लेकिन इसका वास्तविक भौतिक आधार तो प्रकृति प्रदान करती है। मनुष्य अपने वातावरण से संसाधनों का दोहन करके आर्थिक तन्त्र को मजबूत करता है। वह भौतिक वातावरण को परिवर्तित करता रहता है जो उसकी रुचि, कौशल तथा शक्तियों पर निर्भर करता है। लेकिन मानव द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन की एक सीमा होती है जिसके बाहर जाने पर संसाधनों के सृजन के स्थान पर ह्रास प्रारम्भ हो जाता है।

मानव ने संसाधनों को (प्रकृति का उपहार) इनका स्वरूप बदल कर अत्यधिक उपयोगी बनाया है। प्राकृतिक वातावरण के साथ समायोजन कर मनुष्य ने अनेक स्थानों पर प्रगति की है तथा मानवीय उपयोग के क्षेत्र (Human use regions) विकसित किये हैं। इस क्रम में पृथ्वी पर भूमध्यरेखीय प्रदेशों में प्राकृतिक वनस्पति का दोहन किया गया, पश्चिमी यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेन्टीना, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में पशुचारण किया गया। इसी प्रकार खनन कार्य तथा मत्स्य पालन भी विकसित किया गया। स्पष्ट है कि प्रकृति में विद्यमान विविध लक्षणों वाले प्राकृतिक परिवेशों के अनुसार विभिन्न प्रकार के संसाधनों का दोहन प्रारम्भ हुआ जिससे उनकी प्रकृति निरन्तर बदलती रही। संसाधनों की बदलती प्रकृति तथा मानवीय क्रियाओं में विविधता के कारण संसाधनों में विविधता आ गई। अत: इन्हें स्वतन्त्र रूप में पहचानने के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता महसूस की गई है।

मानव द्वारा प्रकृति में विद्यमान संसाधनों को अपने उपयोग में लेकर उद्देश्य पूर्ति को विकास का आधार माना जाता है। मनुष्य इनका दोहन प्राचीनकाल से करता आ रहा है। धीरे-धीरे इनके तीव्र दोहन में संधृत या पोषणीय (Sustainable) विकास की

आवश्यकता महसूस की जाने लगी तथा वर्तमान समय में इनके आनुपातिक उपयोग हेतु इन्हें वर्गीकृत कर योजना बनाई जाने लगी है। संसाधन अनेक प्रकार के होते हैं जिनके वर्गीकरण के आधार भी भिन्न-भिन्न हैं। स्वामित्व की दृष्टि से संसाधन तीन प्रकार के होते हैं, जो क्रमशः व्यक्तिगत, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हैं। धरातल पर उपलब्धता की दृष्टि से चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम-सर्वत्र उपलब्ध संसाधन, जैसे-वायु, द्वितीय-सामान्य रूप से उपलब्ध संसाधन, जैसे-कृषि भूमि, मृदा चारागाह भूमि आदि, तृतीय-सीमित उपलब्धता वाले संसाधन, जैसे-यूरेनियम, सोना आदि, चतुर्थ-संकेन्द्रित संसाधन-जो संसाधन केवल कुछ ही स्थानों पर मिलते हैं, जैसे-केरल तट पर थोरियम आदि। उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि किसी भी संसाधन को किस वर्ग विशेष में रखा जाए, यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि आप उसे किस दृष्टि से देखते हैं। विभिन्न सर्वमान्य आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण निम्न रूपों में किया जा सकता है-

I. उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

(1) नवीनीकरण या नव्यकरणीय संसाधन (Renewable Resources)

(2) अनवीनीकरण या अनव्यकरणीय संसाधन (Non-Renewable Resources)

(3) चक्रीय संसाधन (Recyclable Resources)

II. उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकरण

(1) जैविक संसाधन (Biotic Resources)

(2) अजैविक संसाधन (Abiotic Resources)

III. उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

(1) ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)

(2) कच्चा माल (Raw Material)

(3) खाद्य पदार्थ (Food stuff)

I. उपयोग की सततता पर आधारित वर्गीकरण

किसी भी संसाधन के उपयोग की एक अवधि होती है। कुछ संसाधन न्यून अवधि के अन्दर समाप्त हो जाते हैं, जबकि कुछ का सतत उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपयोग की निरन्तरता या सततता के आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:-

(1) नवीनीकरण या नव्यकरणीय संसाधन (Renewable Resources)-इस श्रेणी में वे सभी संसाधन आते हैं जिनको पुनः उत्पादित किया जा सकता है। इस हेतु भौतिक, यान्त्रिक तथा रासायनिक प्रतिक्रियाएँ अपनाई जाती हैं अतः ये संसाधन असमाप्य होते हैं व इनकी जीवन धारणीय (Sustainble) पुनरावृत्ति सम्भव है। उदाहरणार्थ, वनों के एक क्षेत्र में काटे जाने के उपरान्त नये क्षेत्र में इन्हें पुनः उत्पादित किया जा सकता है। वन्य प्राणियों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है। इसके अन्य उदाहरण सौर ऊर्जा, पवन, जल, मृदा, कृषि, उपजें तथा मानव संसाधन हैं।

(2) अनव्यकरणीय संसाधन (Non-Renewable Resources)-संसाधनों के सतत् उद्योग की श्रेणी में ऐसे संसाधन जिनका एक बार दोहन के उपरान्त उनकी पुनः पूर्ति (Restoration) संभव नहीं है। इनकी मात्रा सीमित रहती है तथा निर्माण अवधि भी लम्बी होती है। अतः इस श्रेणी में संसाधनों का दोहन तीव्र गति से करने पर ये समाप्त हो जाते हैं। भूगर्भ में खनिज संसाधन इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। कोयले का दोहन एक ही बार किया जा सकता है, जबकि इसके निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं। पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, ताम्बा, बॉक्साइट, यूरेनियम, थोरियम आदि संसाधन भी अनव्यकरणीय या समाप्य हैं।

(3) चक्रीय संसाधन (Recyclable Resources)-पृथ्वी पर कुछ ऐसे संसाधन पाये जाते हैं जिनका बार-बार प्रयोग किया जा सकता है, जल संसाधन को विभिन्न समय में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार लोहा भी विभिन्न रूपों में उपयोग में आता है।

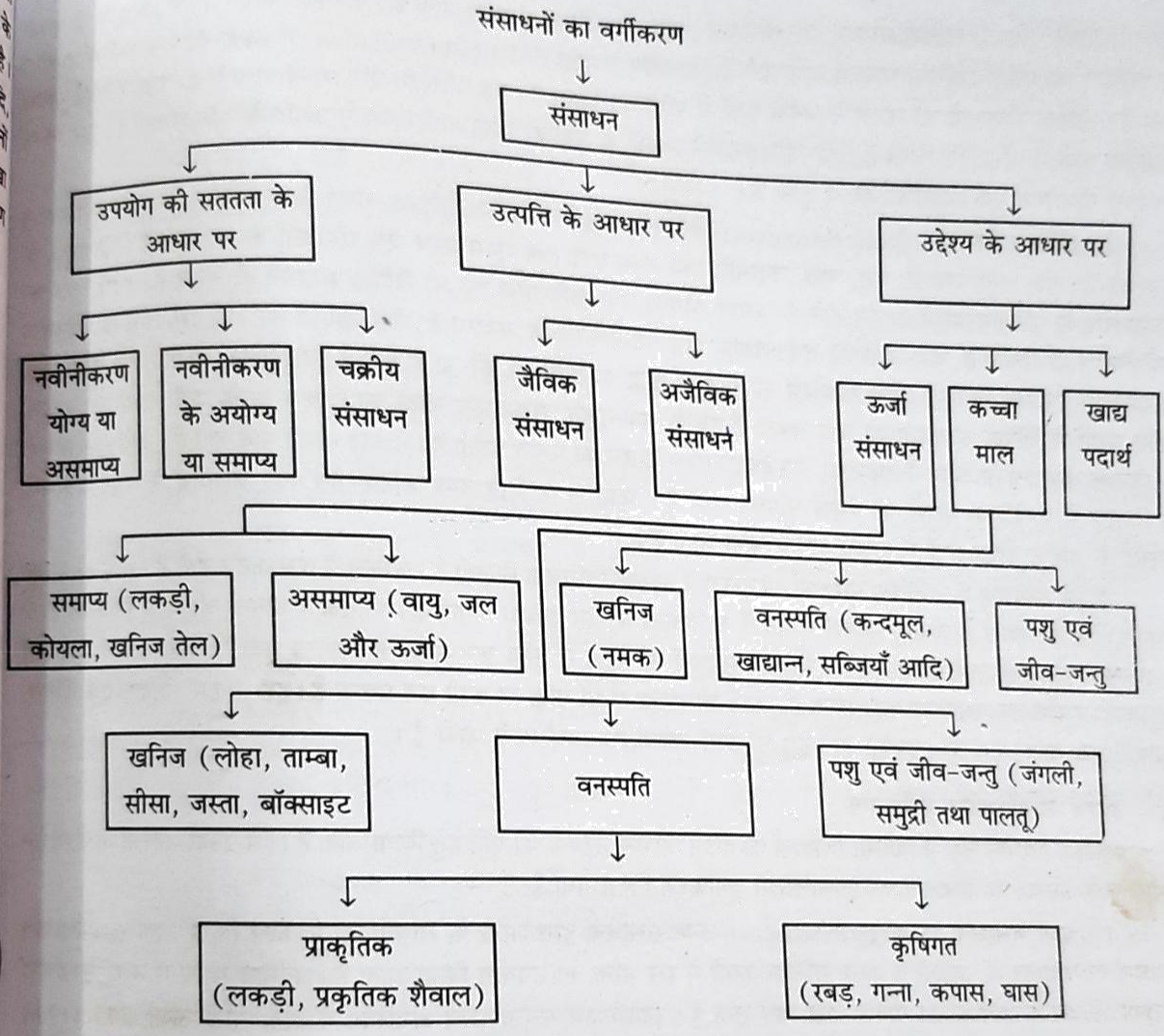

II. उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण :

विभिन्न प्रकार के संसाधन अलग-अलग अवस्थाओं में उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का निम्न श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है-प्रथम भौतिक या अजैविक तथा द्वितीय जैविक संसाधन। भौतिक तथा जैविक संसाधन परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। स्वयं मानव एक जैविक संसाधन है जो पृथ्वी के स्थलीय स्वरूपों में परिवर्तन करते हुए क्रियाशील रहता है। इसी आधार पर मनुष्य ने सांस्कृतिक विकास किया है। इनके एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित रहने पर भी अनेक भिन्नताएँ हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :-

(1) अजैविक संसाधन (Abiotic Resources)-इस श्रेणी के अन्तर्गत अजैविक या अकार्बनिक संसाधन आते हैं जिनमें जीवन-क्रिया नहीं होती है तथा इनका नवीनीकरण सम्भव नहीं है। ये एक बार उपयोग में लेने के उपरान्त समाप्तप्राय: हो जाते हैं। अत: इनके समाप्त संसाधनों की श्रेणी में होने के कारण पोषणीय या आनुपातिक दोहन ही अनिवार्य है। जल, जमीन तथा खनिज इसके उदाहरण हैं। अजैविक संसाधनों के वितरण में असमानता पायी जाती है। कुछ संसाधन, जैसे-लोहा, एल्युमिनियम आदि विस्तृत क्षेत्रों में वितरित हैं जबकि सोना, चाँदी, आणविक, खनिज सीमित क्षेत्रों में वितरित हैं। गिन्सबर्ग ने पृथ्वी तल पर स्थित धरातलीय

स्वरूपों, शैलों, मृदाओं, खनिज सम्पदा, जल संसाधन आदि को भौतिक संसाधन माना है। ये सभी संसाधन प्रकृति प्रदत्त हैं जो पृथ्वी पर विभिन्न स्वरूपों में विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। मानवीय सभ्यता के अभ्युदय (Evolution) में इनका विभिन्न रूपों में उपयोग हुआ है। भौतिक संसाधनों को मानव ने अनेक रूपों में परिवर्तित किया है। यह परिवर्तन ऐसे स्थानों पर नहीं हो पाया है जहाँ मानव ने अनेक रूपों में परिवर्तित किया है। यह परिवर्तन ऐसे स्थानों पर नहीं हो पाया जहाँ मानव ने प्रकृति के साथ समायोजन कर लिया है। ऐसा ग्रीनलैण्ड एवं अण्टार्कटिका में हुआ है।

(2) जैविक संसाधन (Biotic Resources)-जैव मण्डल में स्थित अनेक निश्चित जीवन-चक्र वाले संसाधन जैविक संसाधन कहलाते हैं। वन, वन्य प्रणाली, पशु, पक्षी, वनस्पति तथा अन्य छोटे तथा सूक्ष्म जीव जैव संसाधनों के उदाहरण हैं। जीवाश्मों के कायान्तरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने के कारण कोयला तथा खनिजतेल को भी जैविक संसाधन ही कहते हैं। इनमें कुछ का नवीनीकरण हो सकता है, जैसे-वनस्पति वर्ग। जबकि कुछ नवीनीकरण के अयोग्य हैं, जैसे-खनिज तेल। इन संसाधनों को मानवीय क्रियाओं में प्रभावित किया है। ऐसे संसाधनों की मात्रा में वृद्धि या कमी भी की जा सकती है। पशुपालन, मत्स्यपालन, वृक्षारोपण आदि कार्यों से जैविक संसाधनों को बढ़ा सकते हैं जबकि वनोन्मूलन, संकटापन्न जीवों का शिकार करके कमी लायी जा सकती है। जैविक संसाधनों के दोहन में तकनीकी ज्ञान तथा उपयोग के ढंग का प्रभाव पड़ता है। ये चल साधन माने जाते हैं। जैविक संसाधनों के वितरण में भौगोलिक घटकों की प्रमुख भूमिका रहती है। उदाहरण के लिए उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु में सघन वनस्पति मिलती है जबकि टुण्ड्रा क्षेत्रों में इसका अभाव पाया जाता है।

जैविक संसाधनों में अजैविक संसाधनों की तुलना में अधिक विविधता मिलती है। लेकिन ये कम कठोर होते हैं। साथ ही इनका विकास शीघ्र हो सकता है जबकि भौतिक संसाधनों के विकास में दीर्घ अवधि लगती है। भौतिक संसाधनों की मात्रा निश्चित होती है तथा इसे घटा-बढ़ा नहीं सकते, लेकिन जैविक संसाधनों की मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं। मनुष्य मृदा या जल का निर्माण नहीं कर सकता जबकि वह वृक्षारोपण कर सकता है, जीवों की संख्या में भी वृद्धि या कमी कर सकता है। इस प्रकार भौतिक एवं जैविक संसाधनों का आधार एक ही (पृथ्वी) होते हुए भी इनमें अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

III. उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण

प्रकृति में विभिन्न रूपों में वितरित संसाधनों का दोहन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्यों या संसाधन उपयोगिता के आधार पर संसाधनों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है-

(1) ऊर्जा संसाधन (Energy Resources)-ऊर्जा संसाधनों द्वारा शक्ति के साधनों का विकास किया जाता है। यातायात के साधनों के संचालन में, उद्योगों व अन्य यान्त्रिक कार्यों में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में ऊर्जा संसाधनों को किसी भी देश के विकास का मानक माना जाने लगा है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत 11994 KW है जबकि भारत में मात्र 379 KW तथा नाइजीरिया में 85 KW है। आर्थिक विकास की दर ऊर्जा की उपलब्धता पर निर्भर करती है। ऊर्जा संसाधनों में समाप्य तथा असमाप्य दोनों ही प्रकृति के संसाधन पाये जाते हैं। समाप्य या नवीनीकरण के अयोग्य संसाधनों की श्रेणी में कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस आदि हैं। वन, जल विद्युत, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा तथा ज्वारीय ऊर्जा आदि को नवीकरणीय या असमाप्य ऊर्जा की श्रेणी में रखा गया है। ऊर्जा संसाधनों की बढ़ती महत्ता के कारण इनके जीवनधारणीय विकास की मूल भावना का विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास किया जाना अनिवार्य प्रतीत होता है।

(2) कच्चा माल (Biotic Resources)-कच्चा पदार्थ औद्योगिक विकास का प्रमुख आधार है। ये निम्न तीन प्रकार के होते हैं :-

(i) **खनिज पदार्थ** (Minerals)-भूगर्भ से खोदकर निकाले गये पदार्थों को इस श्रेणी में रखते हैं। इनमें लौह अयस्क, अलौह धातुएँ, गंधक, नमक, चूना-पत्थर, चीका, बालू, इमारती पत्थर तथा अन्य मिश्रित धातुएँ समाहित हैं।

(ii) **वनस्पति** (Vegetation)-प्राकृतिक वनस्पति से प्राप्त प्रमुख एवं गौण, उपजें इस श्रेणी में आते हैं। इनमें लकड़ी, रेशेदार उत्पाद, गोंद, रबर, तेल, बीज, छालें, कार्क, शैवाल तथा अनेक प्रकार के कृषि उत्पाद सम्मिलित हैं।

(iii) **पशु** (Animals)–पशुओं को भी कच्चे माल की श्रेणी में रखते हैं। पशुओं से कच्चे माल के रूप में खालें, समूर, सींग, तेल, चर्बी, ऊन, बाल, रेशम तथा हड्डियाँ प्राप्त होती हैं। ये उत्पाद जंगली, सामूहिक तथा पालतू पशुओं से प्राप्त किये जाते हैं।

(iv) **उत्पादित पदार्थ** (Product Materials)–इसमें रेशे (कपास, सन, पटसन, हेम्स) बागानी रबर, तिलहन, बीज तथा इत्र निकलने वाले फूल आदि सम्मिलित हैं।

(3) **खाद्य पदार्थ** (Food stuff)–मनुष्य प्राचीनकाल से खाद्य संग्रहक रहा है। खाद्य पदार्थ मुख्य रूप से तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त किए जाते हैं :-

(i) **खनिज**–हमारे भोजन में अधिकांश चट्टानों से प्राप्त नमक समाहित है जो मुख्यतया खाद्य पदार्थों के रूप में प्रयुक्त होता है।

(ii) **वनस्पति**–हम भोजन का अधिकांश भाग वनस्पति उत्पादों से प्राप्त करते हैं। वनस्पति उत्पादों में फल, कन्दमूल, पत्तियाँ एवं खुंबी (Mushroom) आदि प्रमुख हैं।

(iii) **पशु एवं जीव-जन्तु**–पशुओं एवं जीव-जन्तुओं से प्रमुख तथा गौण उपजें प्राप्त करते हैं। मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मत्स्य व्यवसाय आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

अधिकार या स्वामित्व के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources on the basis of Possession)–इस आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में रखा गया है :-

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय या सार्वभौमिक संसाधन** (International or Global Resources)–सम्पूर्ण विश्व में मानव कल्याण के लिए उपयोगी वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। पृथ्वी का प्राकृतिक पर्यावरण इस प्रकार का विश्वव्यापी संसाधन है। पृथ्वी पर स्थित महासागर प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन है लेकिन इनका उपयोग कुछ सक्षम देश ही कर पाते हैं, जिनकी सागरीय स्थिति है। सूर्य के प्रकाश का उपयोग भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका आदि सभी देश कर सकते हैं जिनकी स्थिति सूर्य के प्रकाश की प्राप्ति में होती है। सर्वाधिक सूर्य का प्रकाश अयनवर्तीय क्षेत्रों (0 से 23.30) उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों में प्राप्त होता है।

(2) **राष्ट्रीय संसाधन** (National Resources)–ग्लोब पर स्थित किसी भी देश की सीमाओं में विद्यमान सम्पदाओं को राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। लंकाशायर कोयला क्षेत्र इंग्लैण्ड का, पेन्सिलवानिया कोयला क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कालगुर्ली स्वर्ण खानें आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय संसाधन हैं।

(3) **व्यक्तिगत संसाधन** (Individual or Private Resources)–किसी व्यक्ति की निजी चल-अचल सम्पत्ति उसका व्यक्तिगत संसाधन कहलाते हैं। पारिवारिक सम्पत्ति, भूमि, भवन, नकद धनराशि, स्वास्थ्य, उत्तम चरित्र, ईमानदारी तथा मानसिक क्षमता एवं कौशल आदि व्यक्तिगत संसाधन हैं।

ओवेन द्वारा संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources by Owen)

ओवेन (Owen) महोदय ने सन् 1971 में प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण पारिस्थितिकीय सन्दर्भ में प्रस्तुत किया, जो निम्नलिखित हैं–

(1) **अक्षयशील या असमाप्य संसाधन** (Inexhaustible Resources)–इनमें सूर्य का प्रकाश, पवन तथा जल को सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग में दो उपवर्ग हैं– (i) अपरिवर्तनीय (Immutable Resources), जैसे- जल, (ii) दुष्प्रयोजनीय (Misusable Resources), जैसे-जल।

(2) **क्षयशील या समाप्त संसाधन** (Exhaustible Resources)–इस वर्ग में जीवाश्म ईंधन (Fossil Fuel) तथा खनिज पदार्थ प्रमुख हैं। इसके दो उपवर्ग हैं–

(i) **परिरक्षणीय** (Maintainable)–इस वर्ग में वन, वन्य जीव, मृदा की उर्वरता आदि सम्मिलित हैं।

(ii) **अपरिक्षणीय** (Non-Maintainble)–इसमें खनिज संसाधन आते हैं।

सारणी-4.1 : ओ .एम. ओवेन के अनुसार संसाधनों का वर्गीकरण

संसाधन का प्रकार	उदाहरण
I. **अक्षयशील संसाधन** (Inexhaustible Resources)	सूर्य, प्रकाश, वायु, जल
(i) अपरिवर्तन (Immutable)	जल
(ii) दुष्प्रयोजनीय (Misuable)	जल
II. **क्षयशील संसाधन** (Exhaustible Resources)	जीवाश्मीय ईंधन, खनिज
(i) परिरक्षणीय (Maintainable)	वन, वन्यजीव, मृदा की उर्वरता
(अ) पुनर्नवीकरणीय (Renewable)	पादप, जन्तु मृदा की उर्वरता
(ब) अनवीकरणीय (Non-Renewable)	वन्य
(ii) अपरिरक्षणीय (Non-Maintainable)	अधिकांश खनिज
(अ) पुन: प्रयोज्य (Reusable)	मूल्यवान पत्थर, हीरे-जवाहरात
(ब) अप्रयोज्य (Non-Reusable)	कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस

जिम्मरमैन द्वारा संसाधनों का वर्गीकरण (Classification of Resources by Zimmerman)

जिम्मरमैन ने संसाधनों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया है :-

(1) नव्यकरणीयता के आधार पर (On the basis of Renewability)

(2) प्राप्ति के आधार पर (On the basis of Availability)

(3) अन्य आधार पर (On the other basis)

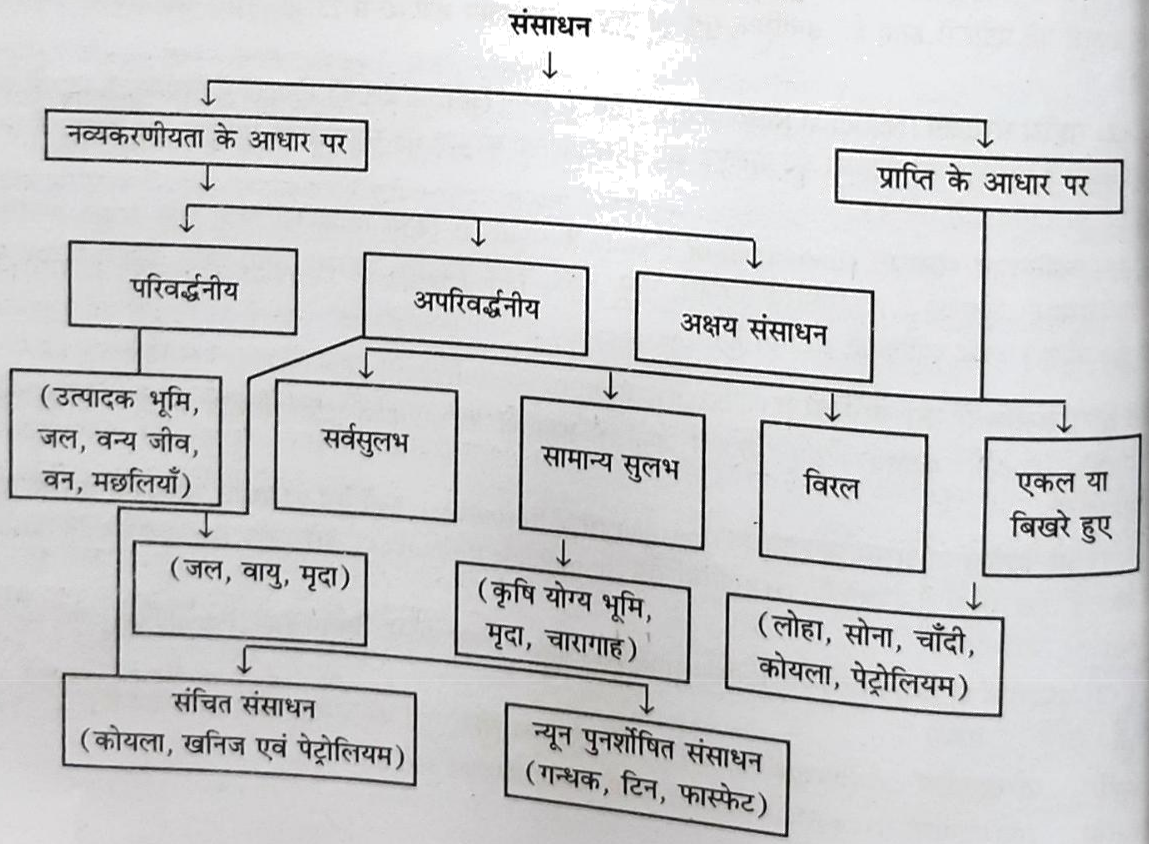

तत्वों या वस्तुओं के निर्माण में सहायक कारकों के आधार पर संसाधनों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं :-

(1) प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

(2) मानव संसाधन (Human Resources)

(1) प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)-प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। नार्टन एस. जिन्सबर्ग ने बताया कि, "प्रकृति द्वारा स्वतन्त्र रूप से प्रदान किये गये पदार्थ जब मानवीय क्रियाओं से आवृत्त होते हैं तो उन्हें प्राकृतिक संसाधन कहते हैं।" गाउडी (Goudie, A.2000) के अनुसार "प्राकृतिक पर्यावरण के मानवीय उपयोग योग्य घटक प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं।" भौतिक सन्दर्भ में जीवमण्डल तथा स्थलमण्डल में संसाधनों के प्राकृतिक वितरण, प्रकार तथा उनके उपयोग के प्रभावों के आधार पर इनकी प्रकृति का निर्धारण किया जाता है। इस आधार पर किसी देश की भौगोलिक स्थिति, आकार, धरातल, जलवायु, वनस्पति, मृदा, पवन, जल, पशु, खनिज, सूर्य का प्रकाश आदि तत्त्व प्राकृतिक संसाधन हैं। इनमें कुछ संसाधन संधृत या दीर्घ पोषणीय (Sustainable) हैं जो लम्बे समय तक उपलब्ध रहेंगे। जैसे-जल, पवन आदि जबकि कुछ संसाधन जैसे-कोयला, पेट्रोलियम जिनके सीमित भण्डार हैं-लम्बी अवधि तक उपलब्ध नहीं रहेंगे।

प्राकृतिक संसाधनों के विषय में उनकी प्रकृति एवं परिभाषा के विश्लेषण के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष स्पष्ट हुए हैं :-

(i) प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक वातावरण के प्रमुख घटक हैं।

(ii) ये मनुष्य के लिए प्रकृति प्रदत्त हैं अर्थात् प्रकृति का उपहार हैं।

(iii) ये संसाधन प्रकृति में बिना मानवीय अनुक्रिया के स्वयं निष्क्रिय रहते हैं लेकिन जब मनुष्य इन्हें उपयोग में लेता है तो ये सक्रिय रूप में आर्थिक विकास में सहयोग करते हैं।

(iv) इनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है, जिसमें कुछ समाप्य तथा कुछ असमाप्य या नव्यकरणीय होते हैं।

(v) प्राकृतिक संसाधनों में विविधता पायी जाती है।

(vi) ये मुख्यत: दो वर्गों- जैविक तथा अजैविक रूपों में मिलते हैं।

(vii) ये सभी ज्ञात न होकर कुछ अज्ञात भी होते हैं।

प्रकृति का कोई भी तत्त्व तभी संसाधन बनता है जब वह मानवीय सेवा करता है। इस सन्दर्भ में 1933 में जिम्मरमैन ने यह तर्क दिया था कि, "न तो पर्यावरण उसी रूप में और न ही उसके अंग संसाधन हैं, जब तक वह मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सक्षम न हो।" प्राकृतिक संसाधनों की प्रकृति गतिशील है जो मानवीय ज्ञान एवं कौशल के विकास द्वारा परिवर्तित होते हैं तथा उनका विकसित रूप अधिक विस्तृत होकर बहुउपयोगी रूप में उपलब्ध होता है। प्राकृतिक संसाधनों के एकल तथा सामूहिक दशाओं के योग में ही जैविक समुदाय का अस्तित्व सम्भव है।

(2) मानव संसाधन (Human Resources)-संस्कृति का निर्माता मानव स्वयं एक शक्तिशाली संसाधन है, जो प्राकृतिक तत्त्वों को अपने ज्ञान एवं कौशल के विकास के द्वारा संसाधन रूप में उपयोग करता है। वह संसाधनों का निर्माता एवं उपभोक्ता दोनों है, जो एक भौगोलिक कारक व संसाधन के रूप में सम्मिलित होकर कार्य करता है। मानव संसाधन में किसी इकाई क्षेत्र में रहने वाली मानव जनसंख्या उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता, स्वास्थ्य, जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संगठन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी स्थिति जैसी विशेषताएँ सम्मिलित हैं। प्राकृतिक वातावरण में जब तक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है तब तक मानव संसाधन कोई समस्या का रूप नहीं लेता है, लेकिन इनकी संख्या बढ़ने पर आवश्यकताओं की आपूर्ति घटने लगती है तथा स्वयं मानव संसाधन भी समस्या बन जाता है।

मानव एक सक्रिय प्रणाली के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान संसाधनों एवं प्राकृतिक परिवेश का उपभोग करते हुए उसके साथ समायोजन (Adjustment) करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वह अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार प्रकृति प्रदत्त तत्त्वों में श्रेष्ठ का चयन करता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पृथ्वी तल को अनेक रूपों में परिवर्तित करता है। कृषि विकास के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाता है। नदी घाटियों पर बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का विकास करता है। एक ओर आर्थिक समृद्धि के लिए प्राकृतिक वनस्पति का विनाश करता है, वहीं दूसरी ओर इसके संरक्षण की सोच उत्पन्न कर वृक्षारोपण करता है।

संसाधनों के उपयोग की दृष्टि से मानव केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा निरन्तर प्राकृतिक परिवेश को परिवर्तित कर उसके अ अनुकूलन करता है। प्राकृतिक घटकों के रूपान्तरण की प्रकृति एवं दर मनुष्य की बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर करती है। मानव ने पृथ्वी पर अपने सांस्कृतिक अभ्युदय के साथ-साथ भू-भागों का उपयोग किया है। जहाँ सर्वप्रथम कृषि एवं पशु का विकास किया तथा धीरे-धीरे मृदा के उपयोग, जल एवं खनिज संसाधनों के महत्त्व को पहचानकर भौगोलिक एवं आर्थिक समा करके संसाधन उपयोग का ढंग सीखा। संसाधन उपयोग का प्रारम्भिक स्वरूप केवल आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित था ले धीरे-धीरे इसका स्वरूप आर्थिक विकास ने ले लिया तथा मानव ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की जिसके फलस्वरूप कमी महसूस होने लगी तथा मानव को इसके संरक्षण की बात सोचनी पड़ी।

संसाधन तथा पर्यावरण के मध्य अन्तः सम्बन्धता
(Resources and Environment Interface)

पर्यावरण के वे सभी तत्त्व जिनका मानवीय उपयोग सम्भव है संसाधन कहलाते हैं। संसाधन प्रकृति के सम्पूर्ण जैव जगत आधार हैं जिन पर जीवों का अस्तित्व निर्भर करता है। इन सभी तत्त्वों पर मानव समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आर्थिक पक्ष भी निर्भर हैं। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण के संसाधनों का उपयोग करके ही आर्थिक सांस्कृतिक भू-दृश्य विकसित क है। मनुष्य अपने ज्ञान, कौशल (Skill), तकनीकी दक्षता तथा जीवीय श्रेष्ठता के कारण अन्य जीवों से आगे निकल गया है। म ने पर्यावरण के प्रतिरोधों से बचने की विधियाँ भी विकसित कर ली हैं। बढ़ते मानवीय दबाव का प्रभाव सन्तुलित पर्यावरण पर तथा संसाधनों का ह्रास प्रारम्भ हो गया। पर्यावरण में सर्वसुलभ संसाधनों (वायु तथा जल) का भी अवनयन (Degradation) होने ल है। इन संसाधनों की बहुलता तथा नव्यकरणीय प्रकृति होने पर भी मौलिक गुणवत्ता का ह्रास हो जाने से पुनर्स्थापन (Restorati असम्भव हो जाएगा। गंगा नदी के जल को विगत पाँच दशकों में इस स्तर तक प्रदूषित कर दिया गया है कि आगामी 21वीं श में भी इसका पुनर्स्थापन नहीं हो पायेगा।

संसाधनों का दोहन तथा पर्यावरण सन्तुलन एक ऐसा अनूठा संयोजन है जिस पर प्राकृतिक व्यवस्था तथा जीवों का अस्ति निर्भर करता है। संसाधन की उपलब्धता मानव समाज की आर्थिक समृद्धि का मूल आधार है, लेकिन इनके अविवेकपूर्ण दोहन कारण पर्यावरण पर दूरगामी दुष्प्रभाव पड़ते हैं। औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त जीवाश्मीय ईंधन (कोयला एवं पेट्रोलियम) का दो बढ़ा तथा हरितगृह प्रभाव बना जिसके फलस्वरूप पृथ्वी का तापमान बढ़ा व सन्तुलित जलवायु के कदम लड़खड़ाने लगे। इसलि यह आवश्यक है कि पर्यावरण तथा संसाधन उपयोग के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जाये जिसके लिए प्रकृति में विद्यम सभी संसाधनों का दक्षतम तथा प्रभावी उपयोग किया जाये। न्यून मात्रा में उपलब्ध तथा समाप्य संसाधनों के विकल्प तलाशने चाहि प्रकृति में अनेक संसाधन ऐसे हैं जिनके निर्माण एवं संचयन में दीर्घ अवधि लगती है जबकि दोहन अल्प समय में कर लिया ज है। उदाहरणार्थ कोयला एवं पेट्रोलियम के निर्माण में लाखों वर्ष लगते हैं जबकि दोहन कुछ वर्षों में कर लिया जाता है। फलस्व संसाधन संकट उत्पन्न हो जाता है।

संसाधन उपयोग के गलत तरीकों से पर्यावरण संकट उत्पन्न हो रहे हैं जिन पर नियन्त्रण कर पाना आसान कार्य नहीं है। ब औद्योगीकरण के कारण अम्ल वर्षा (Acid rain), ओजोन अल्पता, तापमान में वृद्धि जैसी ज्वलन्त पर्यावरणीय समस्यायें सामने रही हैं। मनुष्य पर्यावरण का प्रमुख संसाधन है जो संसाधन निर्माण एवं दोहन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। मानव अ सांस्कृतिक, आर्थिक अभ्युदय के लिए संसाधनों का निरन्तर दोहन करता आया है लेकिन विकास में संसाधन के दोहन को अनि मानने वाला मानव समुदाय पर्यावरणीय सन्तुलन बिगड़ने से आशंकित है अतः जहाँ पर्यावरण में स्थित संसाधन मानवीय समृद्धि लिए आवश्यक हैं वहीं इनका अतिदोहन मानवीय अवनति भी कर सकता है। स्पष्ट है कि संसाधन एवं पर्यावरण में मैत्रीपूर्ण सम्ब के उपरान्त ही प्राकृतिक सन्तुलन सम्भव है जो अन्य जीव-जन्तुओं सहित मानवीय समृद्धि का मूल आधार है।

संसाधन-संरक्षण की नवीन संकल्पना : सतत् विकास
(New Concept of Resources Conservation; Sustainable Development)

पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य हमारी क्षमताओं से सम्बद्ध पर्यावरणीय अनुरक्षण (Maintenance) तथा परिरक्ष (Preservation) पर निर्भर करता है। इसी सन्दर्भ में पर्यावरणीय के दीर्घावधिक उपयोग एवं अभिवृद्धि के लिए सतत् विकास क

संकल्पना का विकास हुआ। 1990 के दशक में यह माना जाने लगा कि पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन या अविवेकपूर्ण तरीकों से उपयोग करने पर पर्यावरणीय ह्रास तथा अस्थिरता उत्पन्न हो रही है। यह सर्वाधिक विकासशील देशों में देखा गया है।

पोषणीय या सतत्ता (Sustainability) सभी प्राकृतिक पर्यावरणीय तन्त्रों का एक अन्त: निर्मित लक्षण है जो मानवीय हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर स्वीकार करता है। यह किसी तन्त्र की क्षमता तथा उसके सतत् प्रवाह को अनुरक्षित (Maintain) रखने के लिए सम्बद्ध करता है, जिसके फलस्वरूप वह तन्त्र अपना स्वस्थ अस्तित्व रख पाता है। पर्यावरणीय संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा पर्यावरणीय तन्त्रों में हस्तक्षेप के कारण यह अन्त: निर्मित क्षमता विकृत हो जाती है, जो इसे असतत् (Unsustainable) बना देती है। इसके विपरीत अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि संसाधनों के दोहन तथा अवनयन से शोध एवं विकास को बढ़ावा मिलता है तथा संसाधनों के नये विकल्पों के बारे में खोज की ओर अग्रसर होते हैं, लेकिन हर सम्भावना की भी एक सीमा होती है। संरक्षणवादी एवं पारिस्थितिकीविद् एक लम्बे समय से प्राकृतिक पर्यावरणीय तन्त्रों में विद्यमान पोषणीयता (Sustainability) से अवगत थे, लेकिन सतत् विकास की संकल्पना का विकास दो दशक पूर्व ही हुआ। सतत् विकास (Sustainable Development) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विश्व संरक्षण रणनीति (World Conservation Strategy) में 1980 में किया गया, लेकिन यह विस्तार से 1987 में पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग (World Commission on Environment and Development- WCED) द्वारा प्रचारित किया गया। WCED के प्रतिवेदन 'Our Common Future' जिसे ब्रंटलैण्ड प्रतिवेदन (Brundtland Report) के नाम से भी जानते हैं, में सर्वप्रथम इसको व्यवस्थित रूप में परिभाषित किया गया। इसके अनुसार,"भावी पीढ़ी की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में ह्रास किये बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना ही सतत् विकास है।"

बॉक्स-4.2 **ब्रंटलैण्ड आयोग** (Brundtland Commission)

संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा (General Assembly) द्वारा 1983 में पर्यावरण एवं विकास पर एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग गठित किया गया था। इस अयोग की अध्यक्ष नार्वे की तत्कालीन प्रधानमंत्री जी. एच. ब्रंटलैण्ड थी। इसलिए इसे ब्रंटलैण्ड आयोग कहते हैं तथा उनके द्वारा 1987 में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, उसे ब्रंटलैण्ड रिपोर्ट कहा जाता है। इसी रिपोर्ट में सर्वप्रथम सतत् (Sustainable) विकास को परिभाषित किया गया। आयोग के अनुसार सतत् विकास की संकल्पना में निम्नांकित दो संकल्पनाएँ निहित हैं–

(i) आवश्यकताओं की संकल्पना पर विचार किया जाना चाहिए, जिसमें विशेष रूप से विश्व के गरीब लोगों की आवश्यकताओं पर बल दिया जाये।

(ii) वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली पर्यावरणीय क्षमता (ability) पर प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन द्वारा निर्धारित सीमाओं पर विचार किया जाये।

एकल परिभाषा सतत्ता या पोषणीयता (Sustainability) के लिए विभिन्न विषयों से विचारों को लेकर समग्र किया गया, जिनमें अर्थशास्त्र से धीमा विकास या विकास नहीं (Slow growth or no growth), समाजशास्त्र से प्रविधि से संविकास (Ecodevelopment), संसाधन पर्यावरण कड़ी (Resources Environment Links) आदि प्रमुख हैं। इनके आधार पर सतत् विकास की परिभाषा का विभिन्न दृष्टिकोण से विस्तार हुआ। वर्तमान में सतत् किया जा रहा है, जिनमें पोषणीयता (Sustainability), पोषणीय वृद्धि (Sustainable Growth), पोषणीय आर्थिक विकास (Sustainable Economic Development) प्रमुख हैं। आस्ट्रेलिया में इसके लिए पारिस्थितिकीय पोषणीय विकास (Ecologically Sustainable Development–ESD) प्रयुक्त किया गया है। भारत में पोषणीय विकास, जीवनधारणीय विकास, टिकाऊ विकास, दीर्घकालीन विकास, सदाबहार विकास आदि को सतत् विकास के समानार्थी रूप में प्रयोग करते हैं।

1987 में यूक्रेन के चरनोबिल परमाणु विपदा के बाद WCED ने लन्दन में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसे ब्रंटलैण्ड आयोग (Brundtland Commission) के नाम से जाना जाता है। इसके प्रमुख ग्रो हरलेस ब्रंटलैण्ड (Gro Horlen Brundtland) ने शीघ्र ही इसकी शब्दावली में परिवर्तन किया तथा सतत् शब्द को इस साहित्य में अपनाया गया, जो विकास की सीमा (Limit to Growth) को प्रतिपादित करता है। ब्रंटलैण्ड आयोग ने विकास की सीमा को स्पष्ट करते हुए बताया कि इस सीमा का अर्थ नगण्य विकास नहीं है वरन् वर्तमान तकनीकी की स्थिति तथा सामाजिक संगठन द्वारा पर्यावरणीय संसाधनों के उपयोग तथा मानवीय गतिविधियों के प्रभावों को सहन करने की जीवमण्डल की क्षमता में स्थित सीमा पर बल देना है। लम्बे समय से यह मान्यता रही है कि पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य प्रकृति के अनुरक्षण एवं संचय (Maintenance and Preservation) की हमारी क्षमताओं पर आधारित

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.